**ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA**
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
**PP. No.- 98-101**
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

# राष्ट्रवाद एवं सामाजिक समरसता, एकात्म मानववाद के साध्य–साधन

राघवेन्द्र प्रताप सिंह
शोध अध्येता– दर्शनशास्त्र विभाग, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर (उ0प्र0), भारत

**Received-19.04.2023, Revised-26.04.2023, Accepted-29.04.2023** **E-mail: raghwendrap14@gmail.com**

***सारांशः*** ***वसुधैव कुटुम्बकम की संस्कृति वाली हमारी भारत भूमि विविध जाति, धर्म संप्रदाय, क्षेत्रीयता भाषावादिता में बटी पड़ी है, परन्तु राष्ट्र के नाम पर सभी एक होकर खड़े रहते है। यह विचार धूमिल होता नजर आ रहा है। आज हमारे राष्ट्र के समक्ष सामाजिक विविधता के कारण अनेकानेक चुनौतियां खड़ी हो गई है। सामाजिक समरसता को कायम रखने के लिए इसका समाधान आवश्यक है। उन चुनौतियों में मुख्यरुप से आतंकवाद, नक्सलवाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, गरीबी, राजनीति, बौद्धिक भटकाव इत्यादि है। चूँकी हम सामाजिक समरसता की बात करते है तो आतंकवाद की समस्या वैश्विक है जिससे निपटने के लिए पूरे विश्व को एक साथ खड़े होने की आवश्यकता है। परन्तु राष्ट्र के आन्तरिक एवं वाह्य समस्यायों के समाधान हेतु एकात्म मानवदर्शन मार्ग प्रस्तुत करता है।***

***कुंजीभूत शब्द– राष्ट्रवाद, एकात्म मानववाद, सामाजिक समरसता, वैचारिक दर्शन, संस्कृति, समाज जीवन, आतंकवाद, नक्सलवाद।***

राष्ट्रवाद और सामाजिक समरसता एक ही सिक्के के दो पहलू है। किसी भी राष्ट्र के भू–भाग पर निवास करने वाले समस्त मानवों में जातिवाद, क्षेत्रवाद, संप्रदायवाद आदि से ऊपर उठकर सामाजिक समरसता के भाव सहित राट्र के उन्नति के लिए जो प्रयास होता है वही वास्तव में राष्ट्रवाद है। अगर किसी राष्ट्र निवासियों ऐसी समरसता नही होती है तो उस राष्ट्र का पतन हो जाता है; अथवा उसे बार–बार दूसरे राष्ट्रों की गुलामी करनी पड़ती है।

"किसी मनीषी ने कहा है कि यदि इतिहास और राष्ट्र की स्वतंत्रता दोनों ही शत्रु के हाथ में पड़कर नष्ट हो रही हो और हम किसी एक ही की रक्षा करने में समर्थ हो तो स्वतंत्रता का मोह छोड़कर इतिहास को ही बचा लेना चाहिए। क्योकिं समय पाकर स्वतंत्रता को पुनः प्राप्त किया जा सकता है। इतिहास के नष्ट हो जाने पर पुनः उसका नव निर्माण नही हो सकता और यदि इतिहास बचा रहेगा तो उससे प्रेरणा और प्रोप्तसाहन पाकर स्वतंत्रता को पुनः प्राप्त किया जा सकता है।"[1]

भारतीय राष्ट्रवाद का वैचारिक दर्शन समाजिक समरसता के मामले में हजारों वर्षों से समृद्ध रहा है। महान इतिहासकार रांगेय राघव के अनुसार 6500–3500 ईसा पूर्व भारत में गरुण, नाग, किरात, यक्ष गन्धर्व, वानर ऋक्ष, दैत्य, दान, देव आदि जातियों के लोग एक साथ निवास करते थे। जो यहाँ से मिश्र और अमेरिका तक गये। हम जिस सुमेरु सभ्यता के बारे में जानते है। वह परस्पर शत्रु जातियों के बारे में माने जाने वाले नाग और गरुण जातियों के सम्मिलन की देन है।[2]

भारतीय राष्ट्रवाद की पहली इकाई परिवार है। भारत में संयुक्त परिवारों का प्रचलन रहा है। यहाँ की सामाजिक समरसता परिवार में शिशु के जन्म से लेकर मृत्यु की अंतिम क्रिया अंत्येष्ठि तक गहराई से जुड़ी है। शिशु के जन्म के पूर्व से ही गर्भवती माता की देख भाल परिवार जनों के साथ–साथ समाज के अन्तज्य जाति की महिला करती है। जो प्रसूति से लेकर शिशु के जन्म और उसके बाद तक जच्चे–बच्चे की देखभाल एक माँ के रुप में करती है। भारतीय परम्परा में संस्कारों कि जो व्यवस्था है। उसमें अन्नप्रासन, मुण्डन, विवाह इत्यादि से लेकर अंत्येष्ठि तक समाज के सभी जातियों के परिवारों की अपनी–अपनी भूमिका निर्धारित है।

इसी प्रकार इस कृषि प्रधान देश में पैदा होने वाले अन्न मे भी समाज के सभी जातियों का हिस्सा परिवार की परम्परा से निर्धारित है। किसान के फसल कटने के साथ ही नाई, धोबी, लुहार, कुम्हार, चमार इत्यादि सभी जाति समुदाय के लोग अपने हिस्से की 'पवनी का बनिया' लेने आ जाते है। यह भारतीय राष्ट्रवाद में सामाजिक समरसता का सर्वोत्तम उदाहरण है। ऐसी व्यवस्था विश्व के किसी भी राष्ट्र में देखने को नहीं मिलती है।

दुर्भाग्यवश पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आने के कारण भारत की परिवार व्यवस्था वर्तमान में क्षरित हो रही है। जिसके कारण संयुक्त परिवार टूट रहे है। यद्यपि कि सभ्यता की यह सर्वोत्तम दार्शनिक प्रणाली भारत में खण्डित हो रही है। किन्तु इसके परिणाम सम्पूर्ण विश्व के मानव समुदाय पर पड़ने वाला है। पाश्चात्य देशों में सम्पूर्ण भौतिक सुविधाओं के होते हुए भी एकल परिवार की परम्परा से उपजी समस्यांये हिंसा, तनाव, अशांति एवं बच्चों के कुंठित होने के रुप में सामने आ रहे है। जिसका समाधान भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से दुनिया को मिल सकता है।

भारतीय राष्ट्रवाद का दर्शन समाज जीवन के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों को स्पर्श करता है। भारतीय राष्ट्रवाद सामाजिक ताने–बाने को प्रगाढ करने के साथ–साथ आर्थिक उपार्जन का भी नियमन करता है। किसी भी व्यक्ति या परिवार को सम्मान सहित आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए जीवन–यापन की बात कहता है– "साई इतना दिजिए, जामें कुटुंब समाय। मै भी भूखा ना रहूँ, साधु ना भूखा जाय।।" जबकि दुनिया के अन्यान्य देशों में लोगों द्वारा अपने जीवन के सुख, आनन्द और शरीर की बलि चढा कर बेहिसाब धनोपार्जन करके शारीरिक एवं मानसिक कष्ट भोगे जा रहे है। ऐसे सारे लोग आज सुख–शान्ति की खोज में दुनिया में भटक रहे है।

भारत को उत्सवों एवं त्योंहारो का देश कहा जाता है। यहाँ पर पेड़ पौधों से लेकर रेंगने वाले जंतुओं तक की पूजा की परम्परा है। जो इसके सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को प्रकृति से भी जोड़ता है। यहाँ होने वाले उत्सवों मे लाखों लोग बगैर किसी आमंत्रण के जुटते है। ऐसा केवल किसी जनपद, प्रान्त स्तर पर होने वाले आयोजनों में ही नही होता, बल्कि यहाँ सम्पूर्ण राष्ट्र के लोग अपने सांस्कृतिक

**अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक**

राष्ट्रवाद को मजबूत करने के लिए महाकुम्भ जैसे आयोजनों में पूरे राष्ट्र से आकर हरिद्वार, नासिक, उज्जैन, प्रयागराज जैसे स्थानों पर परिलक्षित होता है।

भारतीय राष्ट्रवाद के दर्शन में शिक्षा को ज्ञान से जोड़ा गया है। जिसमें मानवीय संवेदना नैतिकता परोपकार सरीखे पक्ष जुड़े हुए है। केवल उच्च–उच्चतर शिक्षा प्राप्त कर लेने से कोई व्यक्ति सम्पूर्ण मानव अथवा राष्ट्र के लिए उपयोगी व्यक्ति नही बन सकता है। उसके अन्दर मानवीय गुणों का होना बहुत ही आवश्यक है। भारतीय परम्परा में आहार–विहार, योग–व्यायाम, ध्यान–साधना सरीखे आयाम जुड़े है। जो किसी व्यक्ति को सम्पूर्ण मानव बनाने में समर्थ है।

भारतीय राष्ट्रवाद राजनैतिक क्षेत्र में भी सुचिता एवं सेवा के मानदण्डो को मानता है। हमारे यहाँ स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त निःस्वार्थ भाव से राष्ट्रसेवा में जुड़े समाज सेवियों को जन सामान्य ने जन प्रतिनिधि के रुप में पसन्द किया और चुना। जैसा कि स्वाभाविक रूप से होता है। बाद के कालखण्डो में स्वार्थ सिद्धि करने वाले छद्म समाज सेवी राजनैतिक क्षेत्र में आ गये जिससे राजनैतिक क्षेत्र कलुषित हुआ। किन्तु राजनैतिक क्षरण के इस दौर मे भी भारत की संसद एवं विधान सभाओं में राष्ट्रवाद के प्रखर प्रहरी चुनकर जाते रहे है।

वर्तमान समय में वसुधैव कुटुम्बकम की संस्कृति वाली हमारी भारत भूमि विविध जाति, धर्म संप्रदाय, क्षेत्रीयता भाषावादिता में बटी पड़ी है। परन्तु यहाँ के व्यक्ति राष्ट्र के नाम पर एक होकर खड़े रहते है । परन्तु यह विचार धूमिल होता नजर आ रहा है। आज हमारे राष्ट्र के समक्ष सामाजिक विविधता के कारण अनेकानेक चुनौतियां खड़ी हो गई है। जिसका सामाजिक समरसता को कायम करने के लिए समाधान आवश्यक है। उन चुनौतियों में मुख्यरुप से आतंकवाद, नक्सलवाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, गरीबी, राजनीति, बौद्धिक भटकाव इत्यादि है। चूँकी हम सामाजिक समरसता की बात करते है तो आतंकवाद की समस्या वैश्विक है जिससे निपटने के लिए पूरे विश्व को एक साथ खड़े होने की आवश्यकता है।

**नक्सलवाद–** नक्सलवाद सामाजिक असमानता का ही परिणाम है; जो आज हमारे समक्ष चुनौती के रुप में खड़ा है । चूँकि वर्तमान दौर में इसका स्वरुप विकृत हो गया है, और यह आतंक का पर्याय बन कर रह गया है। नक्सलवाद के उत्पन्न होने के कारण पर गौर करे तो, भारतीय कम्युनिस्ट नेता चारु मजूमदार और कानू सल्यान ने भारतीय मजदूरों और किसानों के दुर्दशा के लिए सरकारी नीतियों को जिम्मेदार बताया। उनका मानना था कि इन नीतियों के द्वारा उच्च वर्गो का शासनतंत्र व कृषितंत्र पर दबदबा हो गया है। जिसको सशस्त्र क्रांति से ही खत्म किया जा सकता है। अगर इस घटना से सीख ली जाय तो यह प्राप्त होता है कि समाज में किसी विशेष वर्ग या व्यक्तियों को विशेषाधिकार दिया जायेगा तो सामाजिक विषमतायें पनपती रहेंगी और इस प्रकार के वाद उत्पन्न होते रहेंगे।

**संप्रदायवाद–** भारत विभिन्न धर्मो, सांस्कृतिक मूल्यों तथा विविधता का देश है और इस विविध प्रकार के धर्मो में अपने धर्म की श्रेष्ठता और उनके विचारों की यथार्थता को लेकर विभिन्न धर्मो एवं सम्प्रदायों में निरन्तर संघर्ष होते आ रहे है जो की सामाजिक समरसता के लिए कठिन चुनौती है। 15 अगस्तं 1947 को जब स्वतंत्रता की घोषणा के साथ ही यहाँ सब जगह हिन्दू–मुसलमानों के झगड़े शुरु हो गये। दोनों ने एक दूसरे के खून की होली खेली तथा भीषण रक्तपात हुआ। जितना नृशंस व्यवहार इन साम्प्रदायिक दंगो में दिखाई दिया शायद ही कहीं मानव इतिहास मे और कही दिखाई पड़े।

साम्प्रदायिक तनाव का एक प्रमुख कारण मनोवैज्ञानिक भी है। मुसलमान समझते है कि हिन्दुओं से उन्हे सदैव खतरा है तथा हिन्दू समझाते है कि मुसलमान जन्म से ही राष्ट्रद्रोही है। वर्तमान दौर में लोग इन बातो को समझ रहे है, और इन्हे दरकिनार भी कर रहे है। परन्तु धर्म के ठेकेदार अपना उल्लू सीधा करने के लिए धार्मिकता के नाम पर साम्प्रदायिक संघर्ष के लिए लोगो को उत्तेजित कर रहे है।

**जातिवाद–** सामाजिक समरसता के लिए जातिवाद कठिन चुनौती है। भारत में जातियों की भरमार को देखते हुए हमारे गुरु डॉ0 डी0एन0 सिंह कहा करते थे कि 'भारत जातियों का अजायब घर है।' क्योंकि यहां प्रत्येक जाति के अन्दर भी अनेक जातियों का समूह है; तथा सबके अपने–अपने रिति–रिवाज है, परम्पराएं है और सामाजिक नियम है। सभी अपने जातिगत मूल्यों की रक्षा हेतु अपना–अपना संगठन बनाए हुए है। तथा सभी अपनी ही जाति को किसी न किसी रुप में श्रेष्ठ बताते है। साथ ही अन्य जातियों के हितो की उपेक्षा करते है।

जाति के नाम पर आज अनेक संस्थाये स्थापित हो गई है और अपनी मान्यताओं के प्रचार–प्रसार के लिए पत्र–पत्रिकायें प्रकाशित कर रहे है। ग्रामीण परिवेश में जातिवाद का स्वरुप इतना विडम्बना पूर्ण है कि बड़े जाति–छोटे जाति के इस बटवारे में लोगों मे आपसी वैमनश्व फैला हुआ है। इस प्रकार व्यक्ति का जाति में बट कर रहना समाज के लिए घातक है।

**क्षेत्रवाद–** सांस्कृतिक परम्पराओं, भाषा और भौगोलिक आधार पर देश में अलग राज्यों की मॉग उठती रहती है। कोई 'अमार सोनार बंगला' कोई 'मराठा' कोई खालिस्तान तो कोई बुन्देलखण्ड, तेलंगाना तथा पूर्वांचल की मांग करके आन्दोलन खड़ा करते। हद तो तब हो जाती है कि दूसरे प्रदेश का होने पर उसे अपने प्रदेश में काम नही करने दिया जाता तथा मार–पीट की जाती है। अगर ऐसे विचार हमारे अन्दर उफनते रहे की यह हमारे राज्य का है वह दूसरे राज्य का तो राष्ट्रवाद कहा से स्थापित हो पायेगा? समाजिक समरसता कैसे होगी ?

**गरीबी–** भारत में सामाजिक असमानता का एक बड़ा पहलू गरीबी से भी जुड़ा हुआ है। प्राकृतिक संपदाओं जल, जंगल, जमीन पर नैषर्गिक रुप से सामर्थवान लोगो का आधिपत्य रहा है। देश की ज्यादातर आबादी भूमिहीन, गृह विहीन रहकर जीवन यापन करती रही है। देश में आज भी लाखों हेक्टेयर कृषि भूमि ऐसे लोगों के पास है जो स्वयं खेती नही करते। इस भूमि को बटाई, लगान या

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- II, Issues-28, YEAR- April-June-2023

आधे–आधे की हिस्सेदारी पर लेकर गरीब कामगार किसान परिवार अन्न पैदा करता है। कृशि आधारित भारत में यह एक बहुत बड़ी विडम्बना खड़ी होती जा रही है। कि कृषि लागत बढती जा रही है और कामगार परिवारों के युवा गरीबी से उपर उठने के लिए खेती को छोड़कर कल–कारखानों में काम करने जा रहे है।

यह एक बड़ी विभिषिका भी है। इस समाज के सभी वर्गो का पेट भरने के लिए अन्न, फल, सब्जियों की आवश्यकता है; किन्तु अधिकारी के बेटे को अधिकारी, राजनेता के बेटे को राजनेता बन रहा है किन्तु गरीब कामगार किसान का बेटा किसी भी परिस्थिति में किसान बनना नही चाहता। इसका कारण खेती का घाटे में सौदा होना तो है ही सामाजिक तिरस्कार एक बड़ा कारण है। ईमानदारी से समाज जीवन की बात कही जाय तो कामगार किसान के बेटे के साथ कोई कामगार किसान परिवार भी अपनी बेटी का विवाह करना नही चाह रहा है। यह गरीबी के दंश से भी बड़ा सामाजिक दंश–दण्ड है।

**राजनीति–** वर्तमान परिवेश में एक सुखद परिवर्तन भारत में आया है। राजनीति शब्द 'राज' और 'नीति' दो शब्दों से मिलकर बना है। भारत ब्रितानी परतंत्रता से सत्तर वर्ष पूर्व स्वतंत्र हुआ था। आजादी के बाद आरम्भिक काल में शासन–सूत्र, स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने वाले राष्ट्रभक्तों के हाथों में रहा। निश्चित रूप से राष्ट्र के उत्थान के लिए उस समय जो आवश्यकताए थी और जो संसाधन थे, उनका उपयोग किया गया। किन्तु आजादी के समय धर्म के आधार पर ब्रिटिश शासको द्वारा किये गये भारत के बंटवारे और उसके बाद उपजी वैमनस्यता से साम्प्रदायिक भेद भाव उत्पन्न हुआ। इसका सबसे खराब पक्ष यह रहा कि भारतीय राजनीति में इस साम्प्रदायिक तनाव को मिटाने की जगह कतिपय राजनैतिक दलों ने इसे सत्ता प्राप्ति की सीढी बनाते हुए। वोट बैंक के रूप में पालना प्रारम्भ कर दिया। जिसके कारण भारत में साम्प्रदायिक आधार पर राष्ट्रीयता विखण्डित होने लगी।

एक तरफ राजनीति ने जहॉ साम्प्रदायिक आधार पर राष्ट्र की अखण्डता के समक्ष चुनौतियां खड़ी किया वही दूसरी तरफ समाज के सबसे अधिक उपेक्षित वनवासी, गिरिवासी, दलित, पिछड़े वर्ग के लोगों को अशिक्षित और मजबूर रख कर सामाजिक ढॉचे को तार–तार कर दिया। यद्यपि की भारतीय संविधान के निर्माताओं ने समाज जीवन का गहन अध्ययन कर ऐसे वर्गो को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाकर साथ–साथ चलने की व्यवस्था किया था। किन्तु सत्तासीन राजनैतिक दलों ने इनको राष्ट्र की प्रगति में भागीदार बनाने का कोई प्रयास ही नहीं किया। जो एक बहुत बड़ी चूक थी।

कालान्तर में जब भारत में राजनैतिक परिवर्तन हुए तब समाज के ऐसे वंचित उपेक्षित वर्गो के उके निमित्त बने कानूनों को लागू किया गया। जिसके परिणाम स्वरुप इन वर्गो को शिक्षा, स्वास्थ एवं राष्ट्र के उन्नति में भागीदार बनने के अवसर प्राप्त होने लगे।

खेद का विषय है कि आजादी के इतने वर्षो बाद भी अपने देश के राजनैतिक दलों के नेताओं के द्वारा हम भारतीयों को धर्म एवं जातियों के आधार पर बॉटकर सत्ता प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। इनके इस कुकृत्य से हमारी भारतीयता–राष्ट्रीयता एवं सामाजिक समरसता दूषित–कलुषित हो रही है।

वर्तमान में सभी भारतीयों में राष्ट्रीयता का भाव बहुत तेजी से बढ़ा है। इसके पीछे भी देश के राजनैतिक दलों की राजनीति ही काम कर रही है। देश में जाति पंथ, वर्ग के भेदभाव से उपर उठकर भारतीय होने का बोध बढा है।

**बौद्धिक भटकाव–** समाज में विकृत का एक कारण बौद्धिक भटकाव भी है। आज के वैज्ञानिक युग में नित नये अनुसंधान हो रहे है पूरा विश्व अब हमारे हाथों मे सिमट गया है विदेशों से अच्छी–बुरे सभी प्रकार के विचार आम–जन तक आसानी से पहुॅच रहे है। ऐसे में व्यक्ति के सही और गलत का फैसला ही समाज मे समरसता को बना सकता है या बिगाड़ सकता है। वर्तमान साहित्य जो टीबी, समाचार–पत्र/पत्रिकाओं आदि जो सुलभ है। वह केवल अपने टी आर पी के लिये तथ्यों को मसालेदार बनाकर तथा लोक मनोभाव के अनुरुप प्रकाशित कर रहे है। जिसका यह प्रभाव है कि वास्तविक दुनिया से दूर हमारे विचार में एक अलग ही दुनिया बन रही है। कहावत है कि– ''साहित्य ही एक ऐसी दवा है जिसके द्वारा राक्षस को इंसान या इंसान को राक्षस बनाया जा सकता है''। जो कि हमारे इस संस्कृति प्रधान देश में बौद्धिक भटकाव का कारण है।

विविधता में एकता के प्रतीक हमारे देश भारत के राष्ट्रीय एकता में उत्पन्न ये सभी चुनौतियां बहुत ही गम्भीर प्रश्न खड़ा करती है। क्या समाज में भारतीय राष्ट्रीयता व सामाजिक समरसता को स्थापित कर अक्षुण बनाये रखने का कोई उपाय नही है ? दर्शन का कार्य ही जगत की समस्याओं का उपाय खोजना है, और जहॉ व्यक्ति और समाज की बात हो वहा तो दर्शन का कर्तव्य ही हो जाता है। आधुनिक काल के युगद्रष्टा पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने इन सभी समस्याओं के निदान हेतु ''एकात्म मानववाद'' के वैचारिक दर्शन का प्रतिपादन किया है। एकात्म मानववाद में इस सृष्टि को एक सर्पिलाकार चक्र में दर्शाते है। जिसके केन्द्र में व्यक्ति है। जो ईकाई तत्व है। व्यक्ति से परिवार बनता है। परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र पुनः व्यष्टि व समष्टि का निर्माण होता है। इस प्रकार सभी एक दूसरे से जुड़े हुए है।

पं0 जी कहते है कि जिस प्रकार एक व्यक्ति कि आत्मा होती है, ठीक उसी प्रकार समाज एवं राष्ट्र की भी आत्मा होती है। जिसे वह 'चिति' कहते है। चिति के माध्यम से वह समस्त सृष्टि में एकात्मता का भाव निहित करते है। अगर हम इसका गहराई से विश्लेषण करें तो राष्ट्र की मूल इकाई 'व्यक्ति' जब प्रगति कर परिवार की इकाई के रुप में परिवर्तित होता है तो उससे सबसे छोटी इकाई का जो समूह बनता है उसमें भी आयु, ज्ञान, शारीरिक छमता के अनुसार नारी–पुरुष, बालक–वृद्ध के वर्ग बनते है। इतना ही नही इनकी मति–बुद्धि भी अलग–अलग होती है किन्तु परिवार के रूप में यह सुदृढ इकाई होती है। और सभी एक दूसरे की चिंता करते है।

एकात्म मानववाद की तीसरी ईकाई समाज परिवारों से बनती है। किसी गांव, मुहल्ले, कस्बे में जो परिवार समूह निवास करते है वह अलग–अलग परिवारों के होने के बाद भी गांव मुहल्ले के स्तर पर, प्रकृति प्रदत्त उपहारों वायु–जल के साथ–साथ सुरक्षा,

स्वच्छता, संस्कार आदि बिन्दु पर सहगमन करना उनकी आवश्यकता भी होती है एवं आवश्यक भी होता है।

समाज के उपरान्त जो ईकाई बनती है वही है 'राष्ट्र'। राष्ट्र का क्षेत्र एक व्यापक क्षेत्र होता है। जिसमें विभिन्न मत–पंथो, सामाजिक वर्गो अनेक बार खान–पान–परिधान और भाषाएं भी अलग होती है; किन्तु अपने परिवार–समाज के संस्कार, संस्कृति एवं परम्पराओं को अक्षुण रखते हुए, अपने राष्ट्र की पहचान और संपदाओ की सुरक्षा के लिए ऐसे सभी सामाजिक, सांस्कृतिक समाज के लोग राष्ट्रीय स्तर पर अतिसंवेदनशील रह सनद्ध रहते है। उनके अपने परिवार, समाज के अन्दर यदि कोई विद्वेष–विषमता भी होती है तो उसे भूलकर अपने राष्ट्र के सम्मान और सुरक्षा के लिए वह अपने जीवन का उत्सर्ग करने के लिए भी तत्पर रहते है जो किसी भी राष्ट्र की प्रगति सुरक्षा समृद्धि के लिए आवश्यक है।

एकात्म मानववाद का प्रभावी मार्ग वैचारिक दर्शन ही है। इसके सन्दर्भ में विचारको ने लिखा है कि – ''मनुष्य विचारों का पुंज होता है और सर्वप्रथम मनुष्य के चित में विचार ही उभरता है। वही विचार घनीभूत होकर संस्कार बनते हैं और मनुष्य के कर्म रूप में परिणीति होकर व्यष्टि और समष्टि सबके हित का कारक बनते है।''[3]

एकात्म मानववाद के अन्तर्गत राष्ट्रीय भावना के विषय में विवेचन है कि व्यक्ति का चिति जब समाज तथा राष्ट्र से एकात्मता का भाव सन्निहित कर लेता है। तो वह चाहता है कि अपना देश वैभवशाली बने। राष्ट्र सुखी हो। बेरोजगारी, भुखमरी, अशांति समाप्त हो। न्याय हो, आपसी कलह समाप्त हो। साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयता, जातिवादिता, भाषावादिता उपर उठकर लोगों का विचार उन्मुख हो। पं0 जी बताते है कि इस विचार को जागृत करने के लिए पहले 'मै' को समझना होगा। मै क्या हूँ। क्या मै मतलब की मेरा नाम है। इस विषय में एक वाकया बताते है कि– ''एक बार रेलगाड़ी में प्रवास कर रहा था। सवारियों में आपसी तू–तू, मै–मै होगई। बहस ने गाली–गलौज का रूप ले लिया। उनमें एक सज्जन पंजाबी थे। उन्हे संकेत कर सभी पंजाबियों पर एक व्यक्ति ने ताना कस दिया। बस फिर क्या था। वे बोले–देखो भाई, अब तक तुम मुझे उल्टा–सीधा कह रहे थे किन्तु अब तुमने सब पंजाबियों को बुरा भला बताया है। यह मुझे सहन नहीं हो सकता। यह विचारणीय है कि सब पंजाबी लोग तो थे नही पर उस व्यक्ति में वह जरुर थे।''[4] ठीक उसी प्रकार जब देश की बात होती है तो हम उठ खड़े होते है और हम पूरे देश के पक्ष में होते है। यही भाव एकात्म है। जो हमे 'मैं' मे पूरे राष्ट्र का बोध कराता है।

अर्थात शरीर मन बुद्धि और आत्मा का यह समुच्चय ''व्यक्ति'' केवल मै तक ही नही सीमित है। उसका 'हम' से भी अभिष्ट संबंध है। इस प्रकार हमें समाज और समष्टि का भी विचार करना होगा।

पं0 जी समाज के बारे में बताते हुए कहते है कि– ''जिस प्रकार से व्यक्ति पैदा होता है उसी प्रकार से समाज भी पैदा होता है। व्यक्ति मिलकर कभी समाज को नही बनाते। यह कोई क्लब नहीं है, ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनी जैसी सत्ता भी नही है या जैसे रजिस्टर्ड सोसाइटियां बनती है वैसी रजिस्टर्ड सोसाइटी भी नही है। वास्तव में समाज एक ऐसी सत्ता है जिसकी अपनी आत्मा है, जिसका अपना एक जीवन है। इसलिए यह भी उसी प्रकार से जीवमान सत्ता है जैसे मनुष्य जीवमान सत्ता है।''[5]

राष्ट्रभाव को जागृत करने और सामाजिक समरता के लिए हमे किस प्रकार से क्या–क्या कार्य करने होगे। इस विषय पर विचार नितांत आवश्यक है। अबतक हमने एकात्म मानववाद का तात्विक विवेचन किया परन्तु इसका क्रियान्वयन कैसे हो इस पर भी विचार आवश्यक है। समाज में दलित, पिछड़े, गरीब लोगों के उत्थान को दीनदयाल जी 'नारायण सेवा' की संज्ञा देते है तथा अन्त्योदय के मार्ग का प्रतिपादन करते है। जैसा कि अन्त्योदय शब्द से ही विदित हो रहा है कि समाज के सबसे अन्तिम पायदान के व्यक्ति का उदय। अर्थात् सर्वप्रथम हमे उन दलित, शोषित, पिछड़े गरीब लोगों को समाज के मुख्यधारा में लाने के प्रयास करना होगा। जो की राष्ट्र की नितियों द्वारा आसानी से हल किया जा सकता है।

अगले कड़ी में एकात्म मानववाद के ढांचे में राष्ट्र के नीति नियामकों को व्यवहारिक प्रयत्न करना होगा। प्रत्येक व्यक्ति दार्शनिक नही है कि वह वैचारिक आदर्शो को बिना किसी प्रभाव के ग्रहण कर समाज के उत्थान में लग जाय। चूँकि हमारा ध्येय भारतीय संस्कृति का संरक्षण नहीं अपितु उसे गति देना है। जिससे हमारा समाज स्वस्थ व सक्षम हो सके। उसी आधार पर हमारी राष्ट्र की धारणा हो और हमारा समाज स्वस्थ एवं विकासोन्मुख बन सके। इस प्रयास हेतु जीवन–मूल्यों का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।

भारतीय राष्ट्रीयता के वैचारिक दर्शन एवं सामाजिक समरसता के इस विमर्श की उपादेयता तब होगी। जब भारतीय राष्ट्रीयता के पोषक मानवीय मूल्यों एकात्म मानववाद के दर्शन को एवं भारतीय परम्परा के सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, राजनैतिक आयामों को पुनः अंगिकार–पुनर्जीवित करने के दिशा में प्रभावी प्रयास किया जायेगा।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कौशिकेय, शिवकुमार सिंह (2014), क्रांति का प्रथम नायक मंगल पाण्डेय, फैजाबाद, कोशल पब्लिसिंग हाउस 13.
2. राघव, रांगेय (1960), महागाथा अन्धेरा रास्ता भाग–1, किताब महल, इलाहाबाद 131–134.
3. डॉ0 मालवीय, सौरभ (2014, अक्टूबर–दिसम्बर), मानवता के कल्याण का विचार है एकात्म मानव दर्शन, मीडिया विमर्श, रायपुर 115.
4. उपाध्याय, दीनदयाल (2008), राष्ट्र जीवन की दिशा, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ 20.
5. उपाध्याय, दीनदयाल (1998), एकात्म मानववाद, दीनदयाल उ।

*****